अज्ञेय–काव्य में प्रकृति चेतना

Dr.Renu Bhatia
Head,Hindi Department
G.V.M.girls College, Sonepat

'प्रकृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग कृ धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। जिसका अभिप्राय है – समस्त दृश्यमान – चेतन, अचेतन। हिन्दी साहित्य में प्रारम्भिक काल से ही प्रकृति चित्रण का महत्त्व अक्षुण्ण है। लेकिन आधुनिक काल में प्रकृति केवल अनुभूति का ही नहीं, बल्कि विचार का विषय है। आधुनिक कवि प्रकृति का विश्लेषण परम्परागत रूप में न करके नवीन युगबोध से सम्पृक्त होकर करता है। वस्तुतः आधुनिक कवि सामाजिक आवश्यकता अनुरूप ही प्रकृति को विविध रूपों में चित्रित करता है। इस सन्दर्भ में कविवर अज्ञेय का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण दृष्टव्य है – 'मानवेतर ही प्रकृति है – वह सम्पूर्ण परिवेश जिसमें रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है जो कि इन्द्रियगोचर है – जिसे हम देख, सुन, छू सकते हैं और जिसका आस्वादन कर सकते हैं।''[1] डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार अज्ञेय के काव्य में प्रकृति के विविध रूप, उससे ग्रहण विविध ऐन्द्रीय बोध तथा प्रकृति के विविध क्रिया व्यापारों के अनेक मूर्त्त एवं अमूर्त्त बिंब विद्यमान हैं। उनकी दृष्टि के पीछे छिपे हुए अगोचर भाव, वस्तु एवं रहस्य तक पहुँच सकते हैं। कहीं उन्होंने प्रकृति का चित्रण विषय रूप में किया है, कहीं विषयो रूप में, कहीं वह मानवीकृत है, कहीं प्रतीक समन्वित, कहीं वह विभाव के रूप में है तो कहीं 'मात्र' परिवेश चित्रण एवं उपदेश देने के माध्यम रूप में ....उनके प्रकृति बोध का आयाम बहुत विस्तृत है। प्रकृति के विविध रूपों के साथ मानसिक व्यापारों का संश्लेषण, दृश्य के साथ अन्तर्दशन का संयोग, विराट के साथ लघु का मेल उनके प्रकृति बोधकी अनन्य विशेषताएँ हैं। अज्ञेय ने प्रकृति के माध्यम से सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् तीनों का एक साथ ही संधान कर लिया है।[2]

वस्तुतः कवि का प्रकृति चित्रण परम्परागत प्रकृति चित्रण से अलग है। वह वैचारिक, प्रायोगिक एवं मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक भाव भूमि पर प्रतिष्ठापित है। प्रकृति का परम्परागत आलम्बन रूप का एक दृश्य देखिए –

छिटक रही है चांदनी
मदमाती उन्मादिनी
कलगी मोर सजाव ले
कास हुए हैं बावलै।
पकी ज्वार से निकल भा□ों की जोड़ी गयी फलांगती
सन्नाटे में बांक नदी की जगी चमक कर झांकतो।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में चाँदनी रात्रि, नदी, खरगोश, मोर व ज्वार के सौन्दर्य का आलम्बनगत चित्रण है। इसी प्रकार कवि की 'रात में गाँव', धूप, वसन्त, पगडंडी, पूनो की सांझ, नदीतट : एक चित्र, एक चिड़िया की कहानी, अन्तिम आलोक, सागर का भोर, शरद, हरी घास में क्षणभर आदि अनेक कविताओं में प्रकृति के परम्परागत रूप के दर्शन होते हैं।

अज्ञेय काव्य में प्रकृति के मानवीकृत रूप के भी विविध चित्र उपलब्ध हैं। शरद, ऋतुराज, पूनो की सांझ, बावरा अहेरी, शिशिर के प्रति, सावन–मेघ, भीतर जागा दाता, कलगी बाजरे की, कचनार की कली आदि कविताओं में प्रकृति सचेतन होकर मानवीय क्रिया–कलापों में संलिप्त है। 'पूनो की सांझ' कविता से एक उदाहरण देखिए –

पति सेवारत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
ललाकर ओट हो गई।[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में सांझ पर नारी का आरोपण है जो सूर्य रूपी पति की सेवा में रत है। लेकिन चाँद रूपी पराए पुरूष को देखकर ओझल हो जाती है।

कविवर अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति परिवेश रूप में भी चित्रित है। अपने कथ्य को प्रभावी बनाने हेतु उन्होंने अपने काव्य में नागरीय परिवेश, समुद्र, नदी, पहाड़, आकाश, खेतों आदि को परिवेश के रूप में चित्रित किया है। पहाड़ी यात्रा, नन्दा देवी, सागर मुद्रा, चक्रात शिला, बावरा अहेरी, हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान, औद्योगिक बस्ती आदि कविताओं में प्रकृति परिवेशगत रूप में विद्यमान है। 'बावरा अहेरी' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

भोर का बावरा अहेरी

पहले बिछाता है आलोक की लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ
छोटी छोटी चिड़िया
मंझोले परेवे
बड़े बड़े पंखी।[5]

अज्ञेय काव्य में प्रकृति के अलंकरण, उपदेशक एवं प्रतीकात्मक रूप के भी बहुल दर्शन होते हैं। उनकी 'बावरा अहेरी' काव्य संग्रह में प्रकृति–चित्रण की प्रधानता है। इसी संग्रह से प्रकृति के अलंकृत रूप का उदाहरण देखिए –

तुम्हारी देह
मुझ को कनक चंपे की कली है
दूर से ही स्मरण में गंध देती है।[6]

वस्तुतः कवि को अपनी नायिकाओं के सौन्दर्य चित्रण हेतु बहुविध प्राकृतिक उपमानों एवं प्रतीकों को ग्रहण किया है। उनके काव्य में प्रकृति उपदेशक रूप में भी चित्रित है। वस्तुतः जहाँ–जहाँ कवि विराट् तत्त्व, मानवीय सम्बन्धों, मानव मूल्यों, जीवन–रहस्या एवं आत्मबोध की बात करती हैं वहाँ–वहाँ प्रकृति की उपदेशक रूप में उपस्थिति है। 'जितना तुम्हारा सच है' कविता में प्रकृति का उपदेशक रूप देखिए –

कहा सागर ने : चुप रहो।
मैं अपनी अबाधता जैसे
सहता हूँ, अपनी मर्यादा
तुम सहो।
जिसे बाँध तुम नहीं सकते
उसमें अखिन्न मन बहो।
मौन भी अभिव्यंजना है
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।[7]

इतना ही नहीं कवि आत्मबोध करते हुए मानव को उदात्त होने का जीवन संदेश देते हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार में' प्रकृति के इसी उदात्त रूप का अंकन है –

मैंने हवा से माँगा : थोड़ा खुलापन – बस एक प्र□वास
लहर से : एक रोम की सिहरन भर उल्लास
मैंने आका□ा से माँगी
आँख की झपकी – भर असीमता – उधार
सब से उधार माँगा, सब ने दिया
यों मैं जिया और जीता हूँ।[8]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कविवर अज्ञेय के काव्य में प्राकृतिक चित्रण के परम्परागत रूपों के साथ–साथ नवरूप भी उपलब्ध हैं। उनकी वैचारिक, दार्शनिक, उपदेशक, मनोवैज्ञानिक, सत्यान्वेषी, रहस्यात्मक दृष्टि एवं आधुनिक–बोध कवि द्वारा चित्रित प्रकृति चेतना में स्पष्ट परिलक्षित होता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में कह सकते है कि – अज्ञेय जी की काव्य सृष्टि में प्रकृति की गतियों, रूपों एवं मुद्राओं का एक साफ सृष्टि में प्रकृति की गतियों, रूपों एवं मुद्राओं का साफ अंकन है। यद्यपि ये रूप गतियाँ, मुद्राएं लेखक की आंतरिक भावना से संपृक्त है पर उसमें यथार्थता का पक्ष भी पूरी तरह से भास्वर होता है।[9]

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद : अज्ञेय : कवि और काव्य, **पृ॰ 118**
2. डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद : अज्ञेय : कवि और काव्य, **पृ॰ 118–119**
3. अज्ञेय : पूर्वा, **पृ॰ 223**
4. डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद : अज्ञेय : कवि और काव्य, **पृ॰ 126**
5. अज्ञेय : बावरा अहेरी, **पृ॰ 8**
6. अज्ञेय : बावरा अहेरी, **पृ॰ 25**
7. अज्ञेय : इन्द्रधनुष रोंदे हुए ये, **पृ॰ 14**
8. अज्ञेय : कितनी नावों में कितनी बार, **पृ॰ 13**
9. नंददुलारे बाजपेयी : धर्मयुग (अगस्त, 1967), **पृ॰ 19**